

जिनपतिकथितं सद्धर्मलेशं श्रितोपि प्रवरनरभवं सम्प्राप्य गोमायुरुच्चैः।
विपुलतरमुखानि प्राप्तवान्मुक्तिलक्ष्मीं तदिह कुरुत भव्याः सारजैनेन्द्रधर्मम् ॥१०१॥
इति कथाकोशे रात्रिभुक्तित्यागफलप्राप्तप्रीतिकरस्वामिन आख्यानं समाप्तम्।

१०९. पात्रदानाख्यानम्

श्रीमत्तीर्थकरान्नत्वा वृषभादीन् जगद्गुरून्। सतां तान्प्रियकारिण्याः पात्रदानकथां ब्रुवे ॥१॥
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रास्यात्संभवा पूतभारती। भवत्वाशु महाज्ञानसिन्धोः पाराय मे सती ॥२॥
स सम्यग्दर्शनज्ञानवृत्तरत्नापरिग्रहान्। निर्ग्रन्थान्भक्तितो वन्दे भुक्तिमुक्तिप्रदान् मुनीन् ॥३॥
आहारौषधसच्छास्त्रा-भयदानप्रभेदतः। प्राहुश्चत्वारि दानानि चतुराः पूर्वसूरयः ॥४॥
इतिदानादिसिद्धानि पवित्राणि जगत्त्रये। पात्रेषु योजितान्युच्चैः फलन्ति विपुलं फलम् ॥५॥
वटबीजं यथा चोप्तं युक्त्या सन्मृष्टभूमिषु। सुच्छायं फलति व्यक्तं पात्रदानं तथा सुखम् ॥६॥
एकवाण्या यथा नीरं नाना स्वादुप्रदं भवेत्। तरुभेदे तथा पात्रभेदे दानं फलप्रदम् ॥७॥
पात्रं जिनाश्रयी चापि वरं नान्ये सहस्रशः। एककल्पतरुः सेव्यः श्रेयसे न परदुमाः ॥८॥
उत्कृष्टं मुनिनाथश्च मध्यमं श्रावकस्तथा। ज्ञेयं पात्रं जघन्यं तु सदृष्टिर्जिनभक्तिभाक् ॥९॥

एक अत्यन्त अज्ञानी पशुओं में जन्मे सियार ने भगवान् के पवित्र धर्म का थोड़ा सा आश्रय लिया अर्थात् केवल रात्रिभोजनत्याग व्रत स्वीकार कर मनुष्य जन्म लिया और उसमें खूब सुख भोगकर अन्त में अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त की। तब आप हम लोग भी क्यों न इस अनन्त सुख की प्राप्ति के लिए पवित्र जैनधर्म में अपने विश्वास को दृढ़ करें ॥१०१॥

१०९. दान करने वालों की कथा

जगद्गुरु तीर्थकर भगवान् को नमस्कार कर पात्र दान के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती है ॥१॥

जिन भगवान् के मुखरूपी चन्द्रमा से जन्मी पवित्र जिनवाणी ज्ञानरूपी महा समुद्र से पार करने के लिए मुझे सहायता दें, मुझे ज्ञान-दान दें ॥२॥

उन साधु रत्नों को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक हैं, परिग्रह कनक-कामिनी आदि से रहित वीतरागी हैं और सांसारिक सुख तथा मोक्ष सुख की प्राप्ति के कारण हैं ॥३॥

पूर्वाचार्यों ने दान को चार हिस्सों में बाँटा है, जैसे आहार-दान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान। ये ही दान पवित्र हैं। योग्य पात्रों को यदि ये दान दिये जायें तो इनका फल अच्छी जमीन में बोये हुए बड़ के बीज की तरह अनन्त गुणा होकर फलता है। जैसे एक ही बावड़ी का पानी अनेक वृक्षों में जाकर नाना रूप में परिणत होता है उसी तरह पात्रों के भेद से दान के फल में भी भेद हो

इति त्रिविधपात्रेभ्यो दत्त्वा दानं सुधार्मिकैः। प्राप्यते किल यत्सौख्यं कथं व्यावर्ण्यते मया ॥१०॥
 सुकान्तिकीर्तिमारोग्यं रूपसौभाग्यमद्भुतम्। पुण्यं सौख्यतरोर्बीजं कुलं गोत्रं च निर्मलम् ॥११॥
 धनधान्यसुर्वणादियानजं पानकं तथा। पुत्रपौत्रादिसद्गेहं नानाभोगप्रसम्पदा ॥१२॥
 इन्द्रनागेन्द्रचक्रादिपदं शर्मप्रदं सताम्। संगमं सुजनानां च कल्याणानि दिने दिने ॥१३॥
 लभन्ते विमलं सौख्यं प्राणिनः पात्रदानतः। क्रमेण शिवसंगं च यथासौ नाभिनन्दनः ॥१४॥
 ज्ञात्वेति पात्रदानोत्थं फलं विपुलशर्मदम्। सद्भिः सत्पात्रदानेषु मतिः कार्या सदा मुदा ॥१५॥
 ये भव्याः पात्रदानेन फलं प्राप्ताः पुरा परम्। तेषां नामान्यपि ज्ञातुं कः क्षमः श्रीजिनं विना ॥१६॥
 तथा सूरिवरैः प्रोक्ता प्रसिद्धा दानिनो भुवि। तेषां कथाप्रबन्धेऽस्मिन्सन्नामानि प्रवच्यहम् ॥१७॥
 श्रीषेणेन महीशेन श्रीमद्वृषभसेनया। कौण्डेशेन वराहेण प्राप्ता ख्यातिः सुदानतः ॥१८॥

उक्तं च—

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः। वैयावृत्तस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः॥
 श्रीषेणेन सुपात्राय दानमाहारसंज्ञकम्। औषधं मुनये दत्तं श्रीमद्वृषभसेनया ॥१९॥
 कौण्डेशेन पुरा शास्त्रमभयं शूकरेण च। तेषां कथाः प्रकथ्यन्ते संक्षेपेण यथाक्रमम् ॥२०॥

जाता है। इसलिए जहाँ तक बने अच्छे सुपात्रों को दान देना चाहिए। सब पात्रों में जैनधर्म का आश्रय लेने वाले को अच्छा पात्र समझना चाहिए, औरों को नहीं, क्योंकि जब एक कल्पवृक्ष हाथ लग गया फिर औरों से क्या लाभ? जैनधर्म में पात्र तीन बतलाये गए हैं। उत्तम पात्र—मुनि, मध्यम पात्र—व्रती श्रावक और जघन्य पात्र—अव्रतसम्यग्दृष्टि। इन तीन प्रकार के पात्रों को दान देकर भव्य पुरुष जो सुख लाभ करते हैं उसका वर्णन मुझसे नहीं किया जा सकता परन्तु संक्षेप में यह समझ लीजिए कि धन—दौलत, स्त्री—पुत्र, खान—पान, भोग—उपभोग आदि जितनी उत्तम—उत्तम सुख सामग्री है वह तथा इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों की पदवियाँ, अच्छे सत्पुरुषों की संगति, दिनों—दिन ऐश्वर्यादि की बढ़वारी वे सब पात्रदान के फल से प्राप्त होते हैं। पात्रदान के फल से मोक्ष प्राप्ति भी सुलभ है। राजा श्रेयांस ने दान के ही फल से मुक्ति लाभ किया था। इस प्रकार पात्रदान का अनन्त फल जानकर बुद्धिमानों को इस ओर अवश्य अपने ध्यान को खींचना चाहिए। जिन—जिन सत्पुरुषों ने पात्रदान का आज तक फल पाया है, उन सबके नाम मात्र का उल्लेख भी जिन भगवान् के बिना और कोई नहीं कर सकता, तब उनके सम्बन्ध में कुछ कहना या लिखना मुझसे मतिहीन मनुष्यों के लिए तो असंभव ही है। आचार्यों ने ऐसे दानियों में सिर्फ चार जनों का उल्लेख शास्त्रों में किया है। इस कथा में उन्हीं का संक्षिप्त चरित मैं पुराने शास्त्रों के अनुसार लिखूँगा। उन दानियों के नाम हैं—श्रीषेण, वृषभसेना, कौण्डेश और एक पशु बराह—सूअर। इनमें श्रीषेण ने आहारदान, वृषभसेना ने औषधिदान, कौण्डेश ने शास्त्रदान और सूअर ने अभयदान किया था। उनकी क्रम से कथा लिखी जाती है ॥४—२०॥

पूर्वमाहारसद्धानं दत्त्वा श्रीषेणभूपतिः। शान्तीशः शान्तिकृज्जातः क्रमतस्तत्कथां ब्रुवे ॥२१॥
जयश्रीशान्तिनाथस्त्वं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्। तच्चरित्रं जगच्चित्रं संश्रितं शान्तयेस्तु नः ॥२२॥
सन्तः शृण्वन्तु संक्षेपात्तच्चरित्रं जगद्धितम्। श्रुतेन येन भव्यानां भवन्ति सुखकोटयः ॥२३॥
अथ जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतसंज्ञके। पवित्रे श्रीजिनेन्द्रोक्तधर्मणा शर्मकारिणा ॥२४॥
मलयाख्यमहादेशे रत्नसंचयसत्पुरे। श्रीषेणो नामतो राजा प्रजानां हितकारकः ॥२५॥
संजातः पुण्यतो धीरो दाता भोक्ता विचारवान्। निष्कण्टकः सदाचारमण्डितोतीव धार्मिकः ॥२६॥
तस्य राज्ञी महासाध्वी संजाता सिंहनन्दिता। अनन्दिता द्वितीया च रूपलावण्यमण्डिता ॥२७॥
तयोः क्रमेण संज्ञातौ पुत्रौ चन्द्रार्कसन्निभौ। इन्द्रोपेन्द्रादिसेनान्तौ शूरौ वीरौ बलान्वितौ ॥२८॥
इत्यादिपरिवारेण स श्रीषेणः समन्वितः। स्वप्रजाः पालयन्नित्यं पुण्यवान्सुखतः स्थितः ॥२९॥
तत्रैव सात्यकिर्नाम्ना ब्राह्मणोतिमहान्सुधीः। ब्राह्मणी तस्य जंघाख्या सत्यभामा सुता तयोः ॥३०॥
तथा विप्रो बलग्रामे वेदवेदाङ्गपारगः। अग्नीलाब्राह्मणीनाथो नामती धरणीजटः ॥३१॥
इन्द्रभूत्यग्निभूती च तयोः पुत्रौ मनःप्रियौ। दासीपुत्रश्च संजातः कपिलस्तस्य सूक्ष्मधीः ॥३२॥

प्राचीन काल में श्रीषेण राजा ने आहारदान दिया। उनके फल से वे शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए। श्रीशान्तिनाथ भगवान् जय लाभ करें, जो सब प्रकार का सुख देकर अन्त में मोक्ष सुख के देने वाले हैं और जिनका पवित्र चरित का सुनना परम शान्ति का कारण है। ऐसे परोपकार भगवान् को परम पवित्र और जीव मात्र का हित करने वाला चरित आप लोग भी सुनें, जिसे सुनकर आप सुख लाभ करेंगे ॥२१-२३॥

प्राचीन काल में इस भारतवर्ष में मलय नाम का एक अति प्रसिद्ध देश था। रत्नसंचयपुर उसकी राजधानी थी। जैनधर्म का इस देश में खूब प्रचार था। उस समय उसके राजा श्रीषेण थे। श्रीषेण धर्मज्ञ, उदारमना, न्यायप्रिय, प्रजाहितैषी, दानी और बड़े विचारशील थे। पुण्य से प्रायः अच्छे-अच्छे सभी गुण उन्हें प्राप्त थे। उनका प्रतिद्वंद्वी या शत्रु कोई न था। वे राज्य निर्विघ्न किया करते थे। सदाचार में उस समय उनका नाम सबसे ऊँचा था। उनकी दो रानियाँ थीं। उनके नाम थे सिंहनन्दिता और अनन्दिता। दोनों ही अपनी-अपनी सुन्दरता में अद्वितीय थीं, विदुषी और सती थीं। इन दोनों के पुत्र हुए। उनके नाम इन्द्रसेन और उपेन्द्रसेन थे। दोनों ही भाई सुन्दर थे, गुणी थे, शूरवीर थे और हृदय के बड़े शुद्ध थे। इस प्रकार श्रीषेण धन-सम्पत्ति, राज्य-वैभव, कुटुम्ब-परिवार आदि से पूरे सुखी थे। प्रजा का नीति के साथ पालन करते हुए वे अपने समय को बड़े आनन्द के साथ बिताते थे ॥२४-२९॥

यहाँ एक सात्यकि ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम जंघा था। इसके सत्यभामा नाम की एक लड़की थी। रत्नसंचयपुर के पास बल नाम का एक गाँव बसा हुआ था। उसमें धरणीजट नाम का ब्राह्मण वेदों का अच्छा विद्वान् था। अग्नीला उसकी स्त्री थी अग्लीना से दो लड़के हुए। उनके नाम

तद्वेदाध्ययने सोपि कपिलो गूढवृत्तितः। वेदवेदाङ्गपारज्ञो जातो बुद्धिबलान्तराम् ॥३३॥
 ग्रन्थार्थतो महाविद्वान् जातो दासीसुतोपि च। किं करोति नरो लोके बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥३४॥
 तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणाः सर्वे कुपिता धरणीजटे। कृतं त्वया महायोग्यं यद्वासेरः सुपाठितः ॥३५॥
 इतिक्रोधयुतं वाक्यं तेषां श्रुत्वा महाभिया। धरणीजटविप्रेण स स्वगेहाद्बहिष्कृतः ॥३६॥
 कपिलोपि विनिर्गत्य तद्ग्रामादचलाभिधात्। विप्ररूपं समादाय शीघ्रं रत्नपुरं ययौ ॥३७॥
 असौ सात्यकविप्रो हि तं वीक्ष्य कपिलं तदा। विप्रवेषेण संयुक्तं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥३८॥
 ज्ञात्वा योग्यं महाभ्रान्त्या विभूत्या निजपुत्रिकाम्। जम्बूभार्यासमुत्पन्नां तां ददौ सत्यभामिकाम् ॥३९॥
 तस्मै सोपि समादाय तां सतीं सुखतः स्थितः। राज्ञा संपूजितो भूत्वा कुर्वन्व्याख्यां मनोहराम् ॥४०॥
 एवं वर्षाणि जातानि कानिचित्सत्यभामिका। दुश्चरित्रं विलोक्यैव स्वपतेः ऋतुयोगके ॥४१॥
 कस्य पुत्रोयमत्यन्तपापात्मेति ससंशयम्। मानसे दुःखिता यावत्संस्थिता प्रीतिवर्जिता ॥४२॥
 धरणीजटविप्रश्च पापाद्वारिद्र्यपीडितः। रत्नसंचयमायातः श्रुत्वा कपिलवैभवम् ॥४३॥

इन्द्रभूति और अग्निभूति थे। उसके यहाँ एक दासी-पुत्र (शूद्र) का लड़का रहता था। उसका नाम कपिल था। धरणीजट जब अपने लड़कों को वेदादिक पढ़ाया करता, उस समय कपिल भी बड़े ध्यान से उस पाठ को चुपचाप छुपे हुए सुन लिया करता था। भाग्य से कपिल की बुद्धि बड़ी तेज थी। सो वह अच्छा विद्वान् बन गया, एक दासी पुत्र भी पढ़-लिखकर महा विद्वान् बन गया इस धरणीजट को बड़ा आश्चर्य हुआ। पर सच तो यह है कि बेचारा मनुष्य करे भी क्या, बुद्धि तो कर्मों के अनुसार होती है न? जब सर्व साधारण में कपिल के विद्वान् हो जाने की चर्चा उठी तो धरणीजट पर ब्राह्मण लोग बड़े बिगड़े और उसे डराने लगे कि तूने यह बड़ा भारी अन्याय किया जो दासी-पुत्र को पढ़ाया। उसका फल तुझे बहुत बुरा भोगना पड़ेगा। अपने पर अपने जातीय भाइयों को इस प्रकार क्रोध उगलते देख धरणीजट बड़ा घबराया। तब डर से उसने कपिल को अपने घर से निकाल दिया। कपिल उस गाँव से निकल रास्ते में ब्राह्मण बन गया और इसी रूप में वह रत्नसंचयपुर आ गया। कपिल विद्वान् और सुन्दर था। इसे उस सात्यकि ब्राह्मण ने देखा, जिसका कि ऊपर जिक्र आ चुका है। उसके गुण रूप को देखकर सात्यकि बहुत प्रसन्न हुआ। उनके मन पर वह बहुत चढ़ गया। तब सात्यकि ने उसे ब्राह्मण ही समझ अपनी लड़की सत्यभामा का उसके साथ ब्याह कर दिया। कपिल अनायास इस स्त्री-रत्न को प्राप्त कर सुख से रहने लगा। राजा ने उसके पाण्डित्य की तारीफ सुन उसे अपने यहाँ पुराण कहने को रख लिया। इस तरह कुछ वर्ष बीते। एक बार सत्यभामा ऋतुमती हुई सो उस समय भी कपिल ने उससे संसर्ग करना चाहा। उसके इस दुराचार को देखकर सत्यभामा को इसके विषय में सन्देह हो गया। उसने इस पापी को ब्राह्मण न समझ इससे प्रेम करना छोड़ दिया। वह इससे अलग रह दुःख के साथ जिन्दगी बिताने लगी ॥३०-४२॥

इधर धरणीजट के कोई ऐसा पाप का उदय आया कि उसकी सब धन-दौलत बरबाद हो गई

तं ब्राह्मणं समालोक्य दूरतः कपिलो रुषा। सन्तप्तो मानसे चापि वेगतः परया मुदा ॥४४॥
 अभ्युत्थानादिकं कृत्वा वन्दित्वा च पुनः पुनः। विशिष्टासनमारोप्य मातुर्मे सुसहोदरः ॥४५॥
 ब्रूत भो स्वामिनो यूयं सर्वे तिष्ठन्ति सौख्यतः। इति पृष्ट्वा सुखस्नानभोजनैश्चित्तरंजनैः ॥४६॥
 वस्त्रादिभिः समाराध्य सर्वेषामग्रतस्तदा। ममायं जनकः सर्वविप्राणामग्रणीः सुधीः ॥४७॥
 आचारवान्विचारज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः। स्वमातुर्भेदसंभीतो माययैवं जगाद च ॥४८॥
 सोपि दारिद्र्ययुक्तत्वात् पुत्रं प्रतिपद्य च। पापं श्रितस्तदा विप्रो धिग्दारिद्र्यमशर्मकम् ॥४९॥
 एवं दिनेषु जातेषु केषुचिद्गूढवृत्तिः। स विप्रो भक्तितः पृष्टो दत्त्वा सारधनं तथा ॥५०॥
 स्वनाथपितृकः सत्यभामया ब्रूहि भो सुधीः। एकान्ते किं सुतस्तेऽयं सत्यं सत्यवताम्बर ॥५१॥
 तदीयदुष्टचारित्रात्प्रतीतिर्मे न वर्तते। इत्याकर्ण्य द्विजः सोपि यातुमिच्छुर्निजं गृहम् ॥५२॥
 चित्ते वहन्महाद्वेषं लब्धसम्पूर्णवित्तकः। प्रोक्त्वा तद्वृत्तकं सर्वं वेगतः स्वगृहं गतः ॥५३॥

वह भिखारी-सा हो गया। उसे मालूम हुआ की कपिल रत्नसंचयपुर में अच्छी हालत में है। राजा द्वारा उसे धन-मान खूब प्राप्त है। वह तब उसी समय सीधा कपिल के पास आया। उसे दूर से देखकर कपिल मन ही मन धरणीजट पर बड़ा गुस्सा हुआ। अपनी बढ़ी हुई मान-मर्यादा के समय उसका अचानक आ जाना कपिल को बहुत खटका। पर वह कर क्या सकता था। उसे साथ ही उस बात का बड़ा भय हुआ कि कहीं वह मेरे सम्बन्ध में लोगों को भड़का न दें। यही सब विचार कर वह उठा और बड़ी प्रसन्नता से सामने जाकर धरणीजट को उसने नमस्कार किया और बड़े मान से लाकर उसे ऊँचे आसन पर बैठाया ॥४३-४५॥

उसके बाद उसने पूछा-पिताजी, मेरी माँ, भाई आदि सब सुख से तो हैं न? इस प्रकार कुशल समाचार पूछ कर धरणीजट को स्नान, भोजनादि कराया और उसका वस्त्रादि से खूब सत्कार किया। फिर सबसे आगे एक खास मेहमान की जगह बैठाकर कपिल ने सब लोगों को धरणीजट का परिचय कराया कि ये ही मेरे पिताजी हैं। बड़े विद्वान् और आचार-विचारवान् हैं। कपिल ने यह सब समाचार इसीलिए किया था कि कहीं उसकी माता का सब भेद खुल न जाए। धरणीजट दरिद्री हो रहा था। धन की उसे चाह थी ही, सो उसने उसे अपना पुत्र मान लेने में कुछ भी आनाकानी न की। धन के लोभ से उसे यह पाप स्वीकार कर लेना पड़ा। ऐसे लोभ को धिक्कार है, जिसके वश हो मनुष्य हर एक पापकर्म कर डालता है। तब धरणीजट वहीं रहने लग गया। यहाँ रहते इसे कई दिन हो चुके। सबके साथ इसका थोड़ा बहुत परिचय भी हो गया। एक दिन मौका पाकर सत्यभामा ने उसे कुछ थोड़ा बहुत द्रव्य देकर एकान्त में पूछा-महाराज, आप ब्राह्मण हैं और मेरा विश्वास है कि ब्राह्मण देव कभी झूठ नहीं बोलते इसलिए कृपाकर मेरे संदेह को दूर कीजिए। मुझे आपके इन कपिल जी का दुराचार देख यह विश्वास नहीं होता कि ये आप सरीखे पवित्र ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए हों, तब क्या वास्तव में ये ब्राह्मण ही हैं या कुछ गोलमाल है। धरणीजट को कपिल से

दुष्टात्मना स्वनाथेनानिच्छन्ती सहवासताम्। सत्यभामाकुलाचारमानिनी शरणं गता ॥५४॥
 तं भूपतिं तदा तेन रक्षिता स्वसुतेव सा। कपिलोपि समायातः शोकादन्यायकं ब्रुवन् ॥५५॥
 तत्कुशीलं विचार्याशु भूभुजा दुष्टमानसः। निर्घाटितः स्वदेशात्स लम्पटः कपटद्विजः ॥५६॥
 शिष्टानां पालनं दुष्टनिग्रहं ये महीभुजः। कुर्वन्ति तेन्यथा सर्वे प्रजानां धनहारिणः ॥५७॥
 एकदा पुण्ययोगेन स श्रीषेणमहीपतिः। तपो रत्नाकरौ पूतौ पवित्रीकृतभूतलौ ॥५८॥
 प्रतीक्ष्यादित्यगत्याख्यारिंजयाख्यौ महामुनी। चारणौ गृहमायातौ भक्त्या ताभ्यां प्रहर्षतः ॥५९॥
 दत्वात्रं विधिना प्राप पञ्चाश्चर्याणि शुद्धधीः। सत्यं सुपात्रदानेन किं शुभं यत्र जायते ॥६०॥
 रत्नवृष्टिस्तथा पुष्पवृष्टिर्गीर्वाणदुन्दुभिः। त्रिधा वायुर्मरुत्साधुकारश्चाश्चर्यपञ्चकम् ॥६१॥
 ततो राज्यं विधायोच्चैः स राजा पुण्यपाकतः। धातकीखण्डपूर्वार्द्धस्थितोदक्कुरुभूतले ॥६२॥

इसलिए द्वेष हो ही रहा था कि भरी सभा में कपिल ने उसे अपना पिता बता उसका अपमान किया था और दूसरे उसे धन की चाह थी, सो उसके मन के माफिक धन सत्यभामा ने उसे पहले ही दे दिया था। तब वह कपिल की सच्ची हालत क्यों छिपायेगा? जो हो, धरणीजट सत्यभामा को सब हाल कहकर और प्राप्त धन लेकर रत्नसंचयपुर से चल दिया। सुनकर कपिल पर सत्यभामा की घृणा पहले से कोई सौ गुणी बढ़ गई तब उसने उससे बोलना-चालना तक छोड़कर एकान्तवास स्वीकार कर लिया, पर अपने कुलाचार की मान-मर्यादा को न छोड़ा। सत्यभामा को इस प्रकार अपने से घृणा करते देख कपिल उससे बलात्कार करने पर उतारू हो गया। तब सत्यभामा घर से भागकर श्रीषेण महाराज की शरण में आ गई और उसने सब हाल उनसे कह दिया। श्रीषेण ने तब उस पर दयाकर उसे अपनी लड़की की तरह अपने यहीं रख लिया। कपिल सत्यभामा के अन्याय की पुकार लेकर श्रीषेण के पास पहुँचा। उसके व्यभिचार की हालत उन्हें पहले ही मालूम हो चुकी थी, इसलिए उसकी कुछ न सुनकर श्रीषेण ने उस लम्पटी और कपटी ब्राह्मण को अपने देश से निकाल दिया। सो ठीक ही है राजा को सज्जनों की रक्षा और दुष्टों को सजा देनी ही चाहिए। ऐसा न करने पर वे अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं और प्रजा के धनहारी हैं ॥४६-५७॥

एक दिन श्रीषेण के यहाँ आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो चारणऋद्धि के धारी मुनिराज पृथ्वी को अपने पाँवों से पवित्र करते हुए आहार के लिए आए। श्रीषेण ने बड़ी भक्ति से उनका आह्वान कर उन्हें पवित्र आहार कराया। इस पात्रदान से उनके यहाँ स्वर्ग के देवों ने रत्नों की वर्षा की, कल्पवृक्षों ने सुन्दर और सुगन्धित फूल बरसाये, दुन्दुभी बाजे बजे, मन्द-सुगन्ध वायु बहा और जय-जयकार हुआ, खूब बधाइयाँ मिलीं और सच है, सुपात्रों को दिये दान के फल से क्या नहीं हो पाता। इसके बाद श्रीषेण ने और बहुत वर्षों तक राज्य-सुख भोगा। अन्त में मरकर वे धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वभाग की उत्तर-कुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुए। सच है, साधुओं की संगति से जब मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है तब कौन ऐसी उससे बढ़कर वस्तु होगी जो प्राप्त न हो। श्रीषेण की दोनों

काले मृत्वा समुत्पन्नो भोगभूभूरिभोगभाक् । किं न स्यात्साधुसंगेन सौख्यं स्यान्मुक्तिजं यतः ॥६३॥
ते द्वे राज्यौ तथा सा च सत्यभामा महासती । तत्रैवोदक्कुरुदभोगभूमौ राज्ञा समं तदा ॥६४॥
तिस्रो मृत्वा समुत्पन्नास्तत्सुदानानुमोदनात् । दशधा कल्पवृक्षाणां महाभोगानुरंजिताः ॥६५॥

उक्तं च—

मद्यातोद्यविभूषास्त्रगज्योतिर्दीपगृहाङ्गकाः । भोजनामत्रवस्त्राङ्गा दशधा कल्पपादपाः ॥
न रोगो नैव शोकश्च न चिन्ता न दरिद्रता । नाल्पमृत्युर्न वैरं च न सर्पा यत्र पापिनः ॥६६॥
शीतोष्णादिकबाधा न नैव युद्धं न दुर्जनः । यत्र कस्यापि सेवा न मानभङ्गो न कस्यचित् ॥६७॥
यत्रार्थपरिणामेन सर्वे तिष्ठन्ति सौख्यतः । जन्मादिमृत्युपर्यन्तं पात्रदानेन देहिनः ॥६८॥
यत्रोद्भवाः स्वभावोत्थमार्द्धवेन सुदानिनः । प्रान्ते देवगतिं यान्ति शेषपुण्यप्रभावतः ॥६९॥
तत्र सौख्यं चिरं भुक्त्वा स्वपंचेन्द्रियतर्पणम् । स श्रीषेणो महीपालस्तद्दानप्रथमोदयात् ॥७०॥
कैश्चिद्भवान्तरैः पूतैर्महाभ्युदयकारकैः । क्षेत्रेस्मिन्भारते सिद्धे हस्तिनाख्यपुरोत्तमे ॥७१॥
विश्वसेनमहीभर्तुरैराराज्याः सुतो महान् । शान्तीशः तीर्थकृज्जातः पञ्चकल्याणशर्मभाक् ॥७२॥
येत्र भव्याः करिष्यन्ति पात्रदानं सुभक्तितः । तेषां नूनं भविष्यन्ति लोकद्वयमहाश्रियः ॥७३॥

रानियाँ तथा सत्यभामा भी इसी उत्तरकुरु भोगभूमि में जाकर उत्पन्न हुईं। सब इस भोगभूमि में दस प्रकार के कल्पवृक्ष से मिलने वाले सुखों को भोगते और आनन्द से रहते हैं। यहाँ इन्हें कोई खाने-कमाने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती है। पुण्योदय से प्राप्त हुए भोगों को निराकुलता से ये आयु पूर्ण होने तक भोगेंगे। यहाँ की स्थिति बड़ी अच्छी है। यहाँ के निवासियों को कोई प्रकार की बीमारी, शोक, चिन्ता, दरिद्रता आदि से होने वाले कष्ट नहीं सता पाते। इनकी कोई प्रकार के अपघात से मौत नहीं होती। यहाँ किसी के साथ शत्रुता नहीं होती। यहाँ न अधिक जाड़ा पड़ता और न अधिक गर्मी होती है किन्तु सदा एक सी सुन्दर ऋतु रहती है। यहाँ न किसी की सेवा करनी पड़ती है और न किसी के द्वारा अपमान सहना पड़ता है, न यहाँ युद्ध है और न कोई किसी का वैरी है। यहाँ के लोगों के भाव सदा पवित्र रहते हैं। आयु पूरी होने तक ये इसी तरह सुख से रहते हैं। अन्त में स्वाभाविक सरल भावों से मृत्यु लाभ कर ये दानी महात्मा कुछ बाकी बचे पुण्य फल से स्वर्ग में जाते हैं। श्रीषेण ने भी भोग भूमि का खूब सुख भोगा। अन्त में वे स्वर्ग गए। स्वर्ग में भी मनचाहा दिव्य सुख भोगकर अन्त में वे मनुष्य हुए। इस जन्म में ये कई बार अच्छे-अच्छे राजघराने में उत्पन्न हुए। पुण्य से फिर स्वर्ग गए। वहाँ की आयु पूरी कर अबकी बार भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध शहर हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन की रानी ऐरा के यहाँ उन्होंने अवतार लिया। यही सोलहवें श्रीशान्तिनाथ तीर्थकर के नाम से संसार में प्रख्यात हुए। उनके जन्म समय में स्वर्ग के देवों ने आकर बड़ा उत्सव किया था, उन्हें सुमेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीरसमुद्र स्फटिक से पवित्र और निर्मल जल से उनका अभिषेक किया था। भगवान् शान्तिनाथ ने अपना जीवन बड़ी ही पवित्रता के साथ बिताया। उनका जीवन संसार का आदर्श जीवन है। अन्त में योगी होकर उन्होंने धर्म का पवित्र उपदेश देकर अनेक जनों को संसार से पार किया, दुःखों से उनकी

इति ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं स्वशक्त्या बहुभक्तितः। देयं पात्राय सद्भानं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ॥७४॥
सद्रत्नत्रयमण्डितोतिविमलः श्रीमूलसंघे महान् श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः श्रीकुन्दकुन्दान्वये।
तच्छिष्येण सुपात्रभोजनमहादानक्षणे शर्मणे भूयाच्छान्तिविभोः कथा विरचिता श्रीनेमिदत्तेन वः ॥७५॥

इति कथाकोशे पात्राहारदानफलप्राप्त-श्रीश्रीषेणमहाराजाख्यानं समाप्तम्।

११०. औषधदानफलाख्यानम्

नत्वा श्रीमज्जिनेन्द्राणां भारत्याः सद्गुरोः क्रमान्। कथामौषधदानस्य वक्ष्ये त्रैलोक्यपूजितान् ॥१॥
दीर्घायुः स्वस्थता चित्ते कुष्ठादिव्याधिसंक्षयः। नीरोगता सदानन्दो भवेदौषधदानतः ॥२॥
सौभाग्यं धनधान्यं च रूपलावण्यसम्पदा। तेजोबलं सुखं चैव क्रमेण स्वर्गमोक्षयोः ॥३॥
ततः पात्राय सद्देयं दययान्यत्र च क्वचित्। दानमौषधदसंज्ञं तु हितार्थेदोषवर्जितम् ॥४॥
दानस्यास्य फलं प्राप्तं यदनेकैर्महात्मभिः। तत्फलं शक्यते केन वर्णयितुं जगत्त्रये ॥५॥
फलमौषधदानस्य प्राप्तं वृषभसेनया। तदहं जिनसूत्रेण वक्ष्ये संक्षेपतः श्रिये ॥६॥

रक्षा कर उन्हें सुखी किया। अपना संसार के प्रति जो कर्तव्य था उसे पूरा कर इन्होंने निर्वाण लाभ किया। यह सब पात्रदान का फल है। इसलिए जो लोग पात्रों को भक्ति से दान देंगे वे भी नियम से ऐसा ही उच्च सुख लाभ करेंगे। यह बात ध्यान में रखकर सत्पुरुषों का कर्तव्य है, कि वे प्रतिदिन कुछ न कुछ दान अवश्य करें। यही दान स्वर्ग और मोक्ष के सुख का देने वाला है ॥५८-७४॥

मूलसंघ में कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारी थे। इन्हीं गुरु महाराज की कृपा से मुझ अल्पबुद्धि नेमिदत्त ब्रह्मचारी ने पात्रदान के सम्बन्ध में श्रीशान्तिनाथ भगवान् की पवित्र कथा लिखी है। यह कथा मेरी परम शान्ति की कारण हो ॥७५॥

११०. औषधिदान की कथा

जिन भगवान् जिनवाणी और जैन साधुओं के चरणों को नमस्कार कर औषधिदान के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती हैं ॥१॥

निरोगी होना, चेहरे पर सदा प्रसन्नता रहना, धनादि विभूति का मिलना, ऐश्वर्य का प्राप्त होना, सुन्दर होना, तेजस्वी और बलवान् होना और अन्त में स्वर्ग या मोक्ष का सुख प्राप्त करना ये सब औषधिदान के फल हैं। इसीलिए जो सुखी होना चाहते हैं उन्हें निर्दोष औषधिदान करना उचित है। इस औषधिदान के द्वारा अनेक सज्जनों ने फल प्राप्त किया है, उन सबके सम्बन्ध में लिखना औरों के लिए नहीं तो मुझ अल्पबुद्धि के लिए तो अवश्य असम्भव है। उनमें से एक वृषभसेना का पवित्र चरित यहाँ संक्षिप्त में लिखा जाता है। आचार्यों ने जहाँ औषधिदान देने वाले का उल्लेख किया है वहाँ वृषभसेना का प्रायः कथन आता है। उन्हीं का अनुकरण मैं भी करता हूँ ॥२-६॥